आवश्यक निवेदन

प्रस्तुत अध्ययन सामग्री, तालिकाएँ एवं चित्र आदि श्रीमती सारिका विकास छाबड़ा द्वारा तैयार किये गए हैं |
इनका अन्यत्र एवं अन्य भाषा में उपयोग करने के पूर्व उनसे अनिवार्यत: संपर्क कर लें |

आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धांत-चक्रवर्ती द्वारा रचित

गोम्मटसार जीवकाण्ड

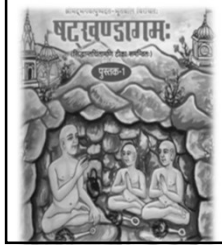

Presentation Developed By:
Smt Sarika Vikas Chhabra

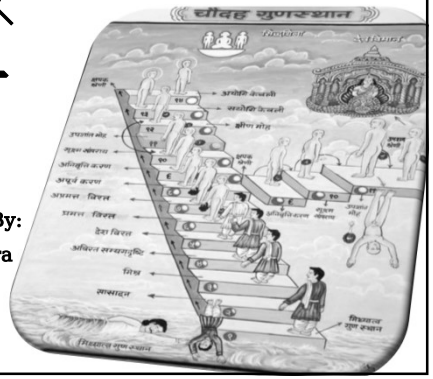

ग्रन्थ प्रारम्भ करने के पूर्व जानने योग्य 6 बातें

ग्रन्थ का नाम	• गोम्मटसार जीवकाण्ड अपरनाम पञ्चसंग्रह
कर्ता	• 1. मूलकर्ता, 2.अर्थकर्ता, 3. उत्तरकर्ता
प्रमाण	• 22 अधिकार, गाथा संख्या - 734
हेतु	• अर्थात् प्रयोजन
निमित्त	• भव्य जीवों के निमित्त, चामुंडराय राजा के प्रश्न के उत्तर हेतु
मंगलाचरण	• नेमिनाथ भगवान को नमस्कार तथा • ग्रन्थ के कहने की प्रतिज्ञा

हेतु

प्रत्यक्ष
- अज्ञान का विनाश
- सम्यग्ज्ञान रूपी सूर्य की उत्पत्ति
- देव-मनुष्यादी द्वारा पूजा प्राप्ति
- कर्म निर्जरा

परोक्ष
- अभ्युदय सुख
- मोक्ष सुख

गाथा 1 : मंगलाचरण

सिद्धं सुद्धं पणमिय जिणिंदवरणेमिचंदमकलंकं।
गुणरयणभूसणुदयं जीवस्स परूवणं वोच्छं॥

❁जो सिद्ध, शुद्ध एवं अकलंक हैं एवं

❁जिनके सदा गुणरूपी रत्नों के भूषणों का उदय रहता है,

❁ऐसे श्री जिनेन्द्रवर नेमिचंद्र स्वामी को नमस्कार करके

❁जीव की प्ररूपणा को कहूंगा ।

ग्रन्थ का विषय

गुण जीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य।
उवओगो वि य कमसो वीसं तु परुवणा भणिदा ॥2॥

❁गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणा और उपयोग इस प्रकार ये बीस प्ररूपणा पूर्वाचार्यों ने कही हैं ॥2॥

20 प्ररूपणायें

- गुणस्थान
- जीव समास
- पर्याप्ति
- प्राण
- संज्ञा
- 14 मार्गणा
- उपयोग

14 मार्गणायें

❁गति
❁इन्द्रिय
❁काय
❁योग
❁वेद
❁कषाय
❁ज्ञान
❁संयम
❁दर्शन
❁लेश्या
❁भव्य
❁सम्यक्त्व
❁संज्ञी
❁आहार

संखेओ ओघो त्ति य, गुणसण्णा सा च मोहजोगभवा ।
वित्थारादेसो त्ति य, मग्गणसण्णा सकम्मभवा ॥3॥

- संक्षेप और ओघ यह गुणस्थान की संज्ञा है और वह मोह तथा योग के निमित्त से उत्पन्न होती है ।
- इसी तरह विस्तार तथा आदेश यह मार्गणा की संज्ञा है और वह भी अपने-अपने योग्य कर्मों के उदयादि से उत्पन्न होती है तथा
- चकार से गुणस्थान की सामान्य एवं मार्गणा की विशेष संज्ञा भी होती है ॥3॥

	गुणस्थान	*मार्गणा*
अन्य नाम	*संक्षेप, ओघ, सामान्य*	*विस्तार, आदेश, विशेष*
कारण	*मोह और योग*	*अपना-अपना कर्म उदयादि*

20 प्ररूपणाओं का अंतर्भाव

आदेसे संलीणा, जीवा पज्जत्ति-पाण-सण्णाओ।
उवओगो वि य भेदे, वीसं तु परूवणा भणिदा॥4॥

अर्थ - जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा और उपयोग इन सब भेदों का मार्गणाओं में ही भले प्रकार अन्तर्भाव हो जाता है। इसलिये अभेद विवक्षा से गुणस्थान और मार्गणा ये दो प्ररूपणा ही माननी चाहिये। किन्तु बीस प्ररूपणा जो कही हैं वे भेद विवक्षा से हैं ॥4॥

प्ररूपणा

- गुणस्थान
- मार्गणा में गर्भित
  - जीवसमास
  - पर्याप्ति
  - प्राण
  - संज्ञा
  - उपयोग

इंदियकाये लीणा, जीवा पज्जत्ति-आण-भास-मणो।
जोगे काओ णाणे, अक्खा गदिमग्गणे आऊ॥5॥

❁अर्थ – जीव-समास एवं पर्याप्ति का इन्द्रिय तथा काय-मार्गणा में
❁श्वासोच्छ्वास, वचन-बल एवं मनो-बल प्राणों का पर्याप्ति में
❁कायबल प्राण का योग-मार्गणा में,
❁इन्द्रिय प्राणों का ज्ञान-मार्गणा में एवं
❁आयु-प्राण का गति-मार्गणा में अंतर्भाव होता है ॥5॥

मायालोहे रदिपुव्वाहारं, कोहमाणगम्हि भयं।
वेदे मेहुणसण्णा, लोहम्हि परिग्गहे सण्णा॥6॥

❁अर्थ - आहार संज्ञा का माया तथा लोभ कषाय में,
भय संज्ञा का क्रोध तथा मान कषाय में,
मैथुन संज्ञा का वेद कषाय में एवं
परिग्रह संज्ञा का लोभ कषाय में अंतर्भाव होता है ॥6॥

सागारो उवजोगो, णाणे मग्गम्हि दंसणे मग्गे।
अणगारो उवओगो, लीणो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं॥7॥

❁अर्थ - साकार उपयोग का ज्ञानमार्गणा में एवं
❁अनाकार उपयोग का दर्शन मार्गणा में अंतर्भाव होता है,
❁ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने निर्दिष्ट किया है ॥7॥

प्ररूपणा	मार्गणा	संबन्ध	किस प्रकार
जीवसमास	इन्द्रिय एवं काय	स्वरूप-स्वरूपवान् सामान्य-विशेष	इन्द्रिय,काय - स्वरूप । जीवसमास – स्वरूपवान् । जीवसमास - सामान्य । इन्द्रिय,काय - विशेष
पर्याप्ति	इन्द्रिय एवं काय	धर्म-धर्मी	पर्याप्ति-धर्म । इन्द्रिय,काय - धर्मी
प्राण -५ इन्द्रिय -काय-बल -वचन-बल -मनो-बल -श्वासोच्छ्वास -आयु	ज्ञान	कारण-कार्य	इन्द्रिय - कारण । ज्ञान - कार्य
	योग	सामान्य-विशेष	योग –सामान्य । काय बल-विशेष
	पर्याप्ति में इन्द्रिय एवं काय	कारण-कार्य धर्म-धर्मी	पर्याप्ति -कारण । ३ प्राण -कार्य पर्याप्ति - धर्म । इन्द्रिय,काय - धर्मी
	गति	साहचर्य	आयु एवं गति का उदय साथ-साथ ही होता है

प्ररूपणा	मार्गणा	संबन्ध	किस प्रकार
संज्ञा आहार	माया एवं लोभ कषाय	स्वरूप-स्वरूपवान्	आहार (राग) - स्वरूप । कषाय (राग) - स्वरूपवान्
भय	क्रोध एवं मान कषाय	स्वरूप-स्वरूपवान्	भय (द्वेष) - स्वरूप । कषाय (द्वेष) - स्वरूपवान्
मैथुन	वेद कषाय	कार्य-कारण	वेद कषाय –कारण । मैथुन -कार्य
परिग्रह	लोभ कषाय	कार्य-कारण	लोभ कषाय - कारण । परिग्रह - कार्य
उपयोग ज्ञान	ज्ञान	कार्य-कारण	ज्ञानोपयोग -कारण। ज्ञान -कार्य
दर्शन	दर्शन	कार्य-कारण	दर्शनोपयोग -कारण।दर्शन -कार्य

गुणस्थान का लक्षण

जेहिं दु लक्खिज्जंते, उदयादिसु संभवेहिं भावेहिं ।
जीवा ते गुणसण्णा, णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं ॥8॥

अर्थ - दर्शनमोहनीय आदि कर्मों की उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदि अवस्था के होने पर उत्पन्न होनेवाले जिन परिणामों से युक्त जीव देखे जाते हैं, जीवों के उन परिणामों को गुणस्थान कहा है ॥8॥

गुणस्थान लक्षण

मोहनीय आदि कर्मों के

उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम अवस्था के होने पर

जीव के श्रद्धा और चारित्र गुण की

तारतम्य-रूप अवस्था को

गुणस्थान कहते हैं

उन परिणामों या पर्यायों से युक्त जीव

उस-उस गुणस्थान वाला कहलाता है।

मोहनीय

दर्शन मोहनीय	चारित्र मोहनीय
श्रद्धा गुण के विपरीत परिणमन में निमित्त	चारित्र गुण के विपरीत परिणमन में निमित्त

मिच्छो सासण मिस्सो, अविरदसम्मो य देसविरदो य ।
विरदा पमत्त इदरो, अपुव्व अणियट्टि सुहमो य ॥ 9 ॥
उवसंत खीणमोहो, सजोगकेवलिजिणो अजोगी य ।
चोद्दस जीवसमासा, कमेण सिद्धा य णादव्वा ॥ 10 ॥

❁मिथ्यात्व, सासन, मिश्र, अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म साम्पराय, उपशांत मोह, क्षीण मोह, सयोगकेवली जिन और अयोगकेवली जिन – ये चौदह जीवसमास (गुणस्थान) हैं । और सिद्ध इन जीवसमासों-गुणस्थानों से रहित हैं ।

14 गुणस्थान

क्र.	गुणस्थान नाम	सामान्य स्वरूप
१	मिथ्यात्व	अतत्त्वश्रद्धान
२	सासादन	सम्यक्त्व की विराधना सहित
३	सम्यक्मिथ्यात्व (मिश्र)	सम्यक्त्व भी, मिथ्यात्व भी
४	अविरत सम्यक्त्व	सम्यक्त्व, पर साथ में असंयम
५	देशविरत (संयमासंयम)	एकदेश संयमी
६	प्रमत्त-विरत	प्रमाद के साथ में पूर्ण संयम
७	अप्रमत्त-विरत	प्रमाद के बिना पूर्ण संयम

क्र.	गुणस्थान नाम	सामान्य स्वरूप
८	अपूर्वकरण	जिसके अपूर्व-अपूर्व परिणाम हैं
९	अनिवृत्तिकरण	जिसके परिणामों में भेद नहीं है
१०	सूक्ष्म साम्पराय	जिसके कषाय सूक्ष्म है
११	उपशांत मोह	जिसका मोह उपशांत हुआ है
१२	क्षीण मोह	जिसका मोह क्षीण हुआ है
१३	सयोग केवली	योगसहित केवलज्ञानी
१४	अयोग केवली	योगरहित केवलज्ञानी

आदि दीपक

अर्थात् यहाँ से लेकर आगे के सभी गुणस्थानों में ये भाव पाया जाता है

जैसे अविरत सम्यक्त्व में सम्यक्त्व शब्द आदि दीपक है

4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 सिद्ध

→

क्योंकि चतुर्थ गुणस्थान से सभी जीव सम्यक्त्वी ही हैं

छठे में विरत शब्द

आदि दीपक

6 7 8 9 10 11 12 13 14

→

6 से सभी जीव विरत हैं

सातवें में अप्रमत्त शब्द

आदि दीपक

7 8 9 10 11 12 13 14

→

7 से सभी जीव प्रमाद-रहित हैं

चौदहवें में अयोग शब्द

आदि दीपक

14 सिद्ध

→

14 से सभी जीव योग-रहित हैं

मध्य दीपक

❁अर्थात् इसके आगे व पीछे दोनों तरफ के गुणस्थानों में यह भाव पाया जाता है

तेरहवें में जिन शब्द

मध्य दीपक

4.....13.....14

चौथे से चौदहवें तक सभी को जिन संज्ञा है

अन्त्य दीपक

❁अर्थात् यहाँ से लेकर पहले के सभी गुणस्थानो में यह भाव पाया जाता है, परन्तु इससे आगे नहीं पाया जाता

जैसे चौथे में अविरत शब्द अंत दीपक

1 2 3 4

4 तक के सभी जीव अविरत हैं

छठे में प्रमत्त शब्द

अंत दीपक

1 2 3 4 5 6

6 तक के सभी जीव प्रमत्त हैं

तेरहवें में सयोग शब्द

अंत दीपक

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13

13 तक के सभी जीव योगसहित हैं

गुणस्थानों में भाव

मिच्छे खलु ओदइओ, विदिये पुण पारणामिओ भावो।
मिस्से खओवसमिओ, अविरदसम्मम्हि तिण्णेव॥11॥

- अर्थ - प्रथम गुणस्थान में औदयिक भाव होते हैं और
- द्वितीय गुणस्थान में पारिणामिक भाव होते हैं।
- मिश्र में क्षायोपशमिक भाव होते हैं और
- चतुर्थ गुणस्थान में औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक इसप्रकार तीनों ही भाव होते हैं ॥11॥

एदे भावा णियमा, दंसणमोहं पडुच्च भणिदा हु।
चारित्तं णत्थि जदो, अविरदअंतेसु ठाणेसु॥12॥

अर्थ - मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में जो नियमरूप से औदयिकादिक भाव कहे हैं वे दर्शन मोहनीय कर्म की अपेक्षा से हैं क्योंकि चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त चारित्र नहीं पाया जाता ॥12॥

जीव के असाधारणभाव

जीव के अतिरिक्त अन्य द्रव्यों में न पाये जाने वाले अर्थात् मात्र जीव में ही पाये जाने वाले भावों को जीव के असाधारणभाव कहते हैं ।

औपशमिक भाव

❁मोहनीय कर्म के अंतरकरणरूप उपशम के निमित्त से होनेवाले जीव के भावों को औपशमिक भाव कहते हैं ।

क्षायिक भाव

❁ कर्मक्षय के समय में होनेवाले एवं भविष्य में अनंत काल पर्यंत रहनेवाले जीव के शुद्धभावों को क्षायिक भाव कहते हैं ।

क्षायोपशमिक भाव

कर्म के क्षयोपशम के निमित्त से होनेवाले

जीव के भावों को

क्षायोपशमिक भाव कहते हैं

औदयिक भाव

कर्मोदय के निमित्त से होनेवाले जीव के भावों को औदयिक भाव कहते हैं ।

पारिणामिक भाव

पूर्णत: कर्मनिरपेक्ष अर्थात्

कर्म के उपशम, क्षय, क्षयोपशम और उदय से निरपेक्ष

जीव के परिणामों को पारिणामिक भाव कहते हैं ।

गुणस्थानों में भाव

गुणस्थान	भाव	अपेक्षा
१	औदयिक	दर्शन मोहनीय
२	पारिणामिक	
३	क्षायोपशमिक	
४	औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक	

देसविरदे पमत्ते, इदरे व खओवसमियभावो दु।
सो खलु चरित्तमोहं, पडुच्च भणियं तहा उवरिं॥13॥

❁अर्थ - देशविरत, प्रमत्त, अप्रमत्त - इन गुणस्थानों में चारित्र मोहनीय की अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव होते हैं तथा

❁इनके आगे अपूर्वकरण आदि गुणस्थानों में भी चारित्र मोहनीय की अपेक्षा से ही भावों को कहेंगे ॥13॥

तत्तो उवरिं उवसमभावो, उवसामगेसु खवगेसु।
खइओ भावो णियमा, अजोगिचरिमो त्ति सिद्धे य॥14॥

❁अर्थ - सातवें गुणस्थान से ऊपर उपशम-श्रेणीवाले आठवें, नौवें, दशवें गुणस्थान में तथा ग्यारहवें उपशांत-मोह में औपशमिक भाव ही होते हैं।

❁इसीप्रकार क्षपकश्रेणीवाले उक्त तीनों ही गुणस्थानों में तथा क्षीणमोह, सयोगकेवली, अयोगकेवली इन तीन गुणस्थानों में और गुणस्थानातीत सिद्धों के नियम से क्षायिकभाव ही पाया जाता है ॥14॥

गुणस्थानों में भाव

गुणस्थान	भाव	अपेक्षा
5	क्षायोपशमिक	चारित्र मोहनीय
6 - 7	क्षायोपशमिक	
8, 9, 10, 11 (उपशम श्रेणी)	औपशमिक	
8, 9, 10, 12 (क्षपक श्रेणी)	क्षायिक	
13, 14, सिद्ध	क्षायिक	

मिथ्यात्व गुणस्थान

मिच्छोदयेण मिच्छत्तमसद्दहणं तु तच्च-अत्थाणं।
एयंतं विवरीयं, विणयं संसयिदमण्णाणं॥15॥

अर्थ - मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से होने वाले तत्त्वार्थ के अश्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं।

इसके पाँच भेद हैं - एकान्त, विपरीत, विनय, संशयित और अज्ञान ॥15॥

मिथ्यादृष्टी

मिथ्या

अतत्त्व को विषय करने वाली

दृष्टी

श्रद्धा जिसके है

परिभाषा

मिथ्यात्व नामक दर्शन मोहनीय कर्म के उदय के निमित्त से

होने वाले जीव के अतत्त्वश्रद्धानरूप भाव को

मिथ्यात्व गुणस्थान कहते हैं

परिभाषा

- **निमित्त**
  - दर्शन मोहनीय मिथ्यात्व कर्म का उदय
- **परिणाम**
  - जीव के अतत्त्व श्रद्धान रूप भाव

दर्शन मोहनीय कर्म

- मिथ्यात्व
- सम्यक् मिथ्यात्व
- सम्यक्त्व प्रकृति

मिथ्यात्व के भेद

- एकांत
- विपरीत
- विनय
- संशयित
- अज्ञान

एकांत

- वस्तु के एक अंश को सम्पूर्ण वस्तु मानना
- जैसे - वस्तु नित्य ही है या वस्तु अनित्य ही है

विपरीत

- विपरीतरूप मानना
- जैसे - हिंसादि यज्ञ से स्वर्ग सुख मानना, स्त्री को मोक्ष प्राप्ति मानना

विनय

- समस्त देव व मतों मे समदर्शीपना
- जैसे - गुरुचरण पूजनरूप विनय ही से मुक्ति मानना

संशयित

- देशांतर व कालांतर में अन्यथा भाव होने से मति द्वैविध्य
- जैसे - धर्म रागमय है या वीतरागमय है

अज्ञान

- वस्तु के सामान्य-विशेष भाव के विषय में अज्ञान से उत्पन्न श्रद्धान
- जैसे - अनेकांत स्वरूप वस्तु के सामान्य का और जीव का लक्षण उपयोग है ऐसे विशेष के बारे में अज्ञान

एकांतादि मिथ्यात्व के दृष्टांत

एयंत बुद्धदरसी, विवरीओ बह्म तावसो विणओ।
इंदो वि य संसइयो, मक्कडियो चेव अण्णाणी॥16॥

अर्थ - बौद्धादि मतवाले एकान्त मिथ्यादृष्टि हैं। याज्ञिक ब्राह्मणादि विपरीत मिथ्यादृष्टि हैं। तापसादि विनय मिथ्यादृष्टि हैं। इन्द्र नामक श्वेताम्बर गुरु आदि संशय मिथ्यादृष्टि हैं और मस्करी (मुसलमान) सन्यासी आदिक अज्ञान मिथ्यादृष्टि हैं ॥16॥

एकांतादि के दृष्टांत

मिथ्यात्व	दृष्टांत
एकांत	बौद्ध
विपरीत	बाह्मण
विनय	तापसी
संशयित	इंद्र नाम के श्वेताम्बर गुरु
अज्ञान	मस्करी(मुसलमान)

मिच्छंतं वेदंतो, जीवो विवरीयदंसणो होदि।
ण य धम्मं रोचेदि हु, महुरं खु रसं जहा जरिदो॥17॥

अर्थ - मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से उत्पन्न होने वाले मिथ्या परिणामों का अनुभव करनेवाला जीव विपरीत श्रद्धानवाला (अतत्त्वश्रद्धान संयुक्त) हो जाता है। उसको जिस प्रकार पित्त ज्वर से युक्त जीव को मीठा रस भी अच्छा मालूम नहीं होता उसी प्रकार यथार्थ धर्म अच्छा नहीं मालूम होता - रुचिकर नहीं होता ॥17॥

उदाहरण	सिद्धांत
जैसे पित्तज्वर से युक्त जीव को मीठा रस भी कटु लगता है	वैसे मिथ्यात्व से युक्त जीव को धर्म नहीं रुचता है

मिथ्यादृष्टि के बाह्य चिन्ह

मिच्छाइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं, उवइट्ठं या अणुवइट्ठं॥18॥

अर्थ - मिथ्यादृष्टि जीव समीचीन अर्हन्त आदिक के पूर्वापर विरोधादि दोषों से रहित और हित के करने वाले भी वचनों का यथार्थ श्रद्धान नहीं करता। किन्तु इसके विपरीत आचार्याभासों के द्वारा उपदिष्ट या अनुपदिष्ट असद्भाव का अर्थात् पदार्थ के विपरीत स्वरूप का इच्छानुसार श्रद्धान करता है ॥18॥

मिथ्यादृष्टि के बाह्य चिन्ह

उपदिष्ट (उपदेशित)	अनुपदिष्ट (बिना उपदेशित)
• अरहंत के वचनों पर श्रद्धा नहीं करता है • कुदेवादि के मिथ्या वचनों पर श्रद्धा करता है	• मिथ्या वचनों पर श्रद्धा करता है

मिथ्यात्व के प्रकार

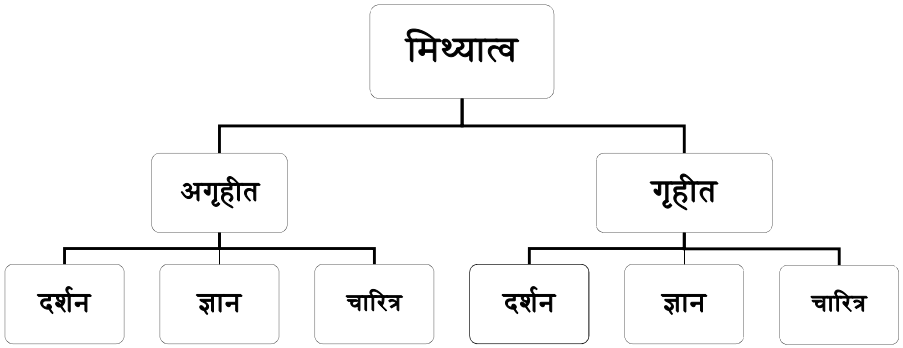

अगृहीत मिथ्यात्व

अ+गृहीत= नया नहीं ग्रहण किया

अर्थात् - इस भव में जो विपरीत मान्यता नयी ग्रहण नहीं की,

अनादि से बिना ग्रहण किये चली आ रही विपरीत मान्यता

गृहीत मिथ्यात्व

गृहीत= नया ग्रहण किया

अर्थात् जो अन्य के उपदेश से ग्रहण किया है

सासादन सम्यक्त्व गुणस्थान

आदिमसम्मत्तद्धा, समयादो छावलि त्ति वा सेसे।
अणअण्णदरुदयादो, णासियसम्मो त्ति सासणक्खो सो॥19॥

अर्थ - प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अथवा 'वा' शब्द से द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के अन्तर्मुहूर्त मात्र काल में से

जब जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण काल शेष रहे

उतने काल में अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ में से किसी एक के उदय में आने से

सम्यक्त्व की विराधना होने पर सम्यग्दर्शन गुण की जो अव्यक्त अतत्त्वश्रद्धानरूप परिणति होती है, उसको सासन या सासादन गुणस्थान कहते हैं ॥19॥

सासादन

स + आसादना

स = सहित; आसादना = विराधना

सम्यक्त्व की विराधना के साथ जो रहे

सासादन सम्यक्त्व

परिणाम

- अव्यक्त अतत्त्वश्रद्धान

निमित्त

- अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ में से किसी एक का उदय

दूसरे गुणस्थान की प्राप्ति कब होती है ?

- ❁औपशमिक सम्यक्त्व के काल में
- ❁कम से कम 1 समय
- ❁ज्यादा से ज्यादा 6 आवलि शेष रहने पर
- ❁4, 5 या 6 किसी भी 1 गुणस्थान से गिरने पर

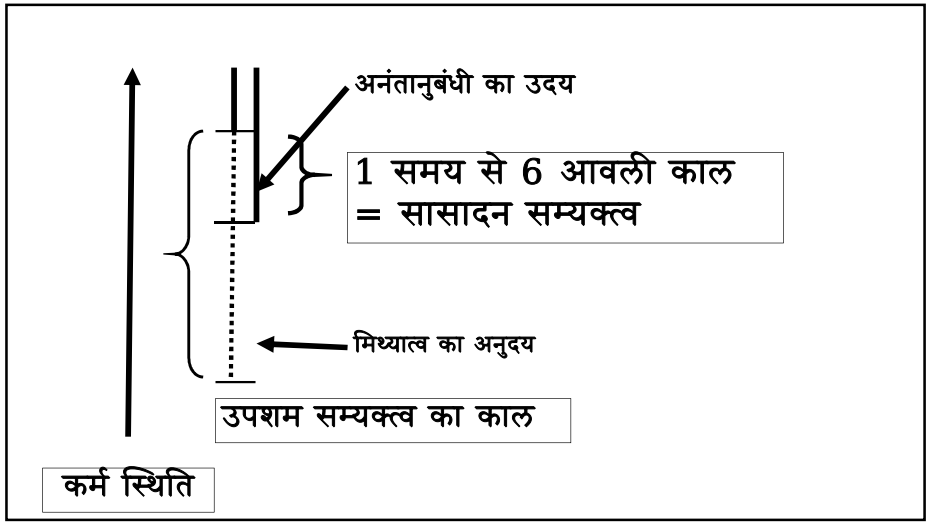

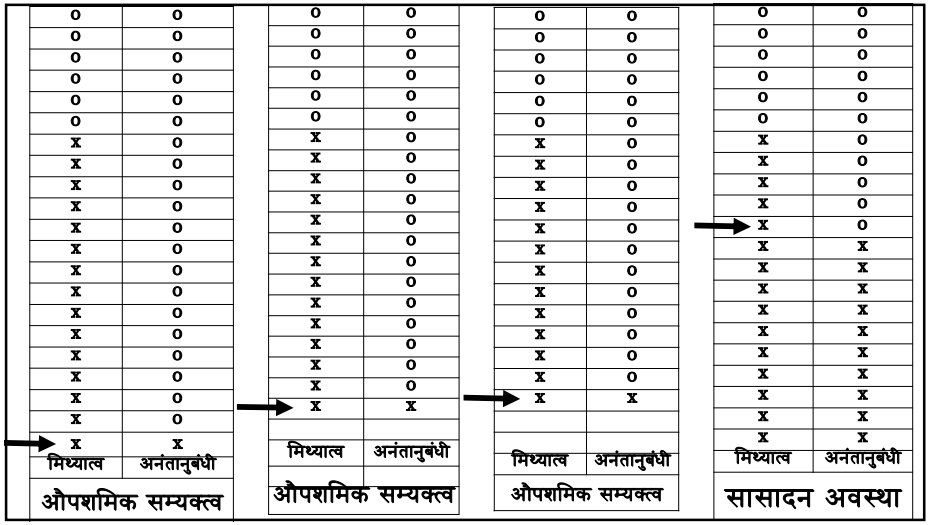

सम्मत्तरयणपव्वयसिहरादो मिच्छभूमिसमभिमुहो।
णासियसम्मत्तो सो, सासणणामो मुणेयव्वो॥20॥

अर्थ - सम्यक्त्वरूपी रत्नपर्वत के शिखर से गिरकर जो जीव मिथ्यात्वरूपी भूमि के सम्मुख हो चुका है, अतएव जिसने सम्यक्त्व की विराधना (नाश) कर दी है, और मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं किया है, उसको सासन या सासादन गुणस्थानवर्ती कहते हैं ॥20॥

जैसे रत्नपर्वत रूपी शिखर से पतित भूमि की ओर नीचे गिरने वाला

वैसे सम्यक्त्व रूपी शिखर से पतित मिथ्यात्व-रूपी भूमि की ओर नीचे गिरने वाला

सासादन के साथ सम्यक्त्व शब्द क्यों है?

भूत-नैगम नय से सम्यक्त्व संज्ञा कहलाती है

काल भी अभी सम्यक्त्व का ही है

दर्शन मोहनीय कर्म का अभी उपशम ही है

जैसे-

भूखा मनुष्य

शक्कर की खीर खा वमन कर

बाद में किंचित् स्वाद लेता है

वैसे-

उपशम सम्यक्त्वी गिरने पर मिथ्यात्व में पहुँचने के पहले बिगड़े हुये सम्यक्त्व का किंचित् स्वाद लेता है

❁प्रश्न: तो क्या यहाँ सम्यक्त्व पाया जा रहा है?

❁उत्तर: नहीं पाया जा रहा । यहाँ सम्यक्त्व की विराधना है ।

❁परन्तु यहाँ पर तो मिथ्यात्व का उदय ही नहीं है । मात्र अनंतानुबंधी का ही उदय है । और अनंतानुबंधी चारित्र मोहनीय की प्रकृति है। फिर सम्यक्त्व का नाश कैसे ?

अनंतानुबंधी द्विस्वभावी है

सम्यक्त्व और चारित्र

दोनों का नाश कराती है

सम्यक्त्व के नाश में निमित्त दोनों हैं

मिथ्यात्व

अनंतानुबंधी

सासादन गुणस्थान में चारित्र कौन-सा हैं?

मिथ्याचारित्र

क्यों?

क्योंकि श्रद्धा मिथ्या है

सासादन गुणस्थान सम्बन्धी तथ्य

इस गुणस्थान का काल समाप्त होने पर जीव नियम से मिथ्यात्व में जाता है ।

ये ऊपर से गिरने का ही गुणस्थान है ।

प्रथम गुणस्थान से द्वितीय गुणस्थान कभी प्राप्त नहीं होता है ।

मात्र उपशम सम्यक्त्वी ही सासादन को प्राप्त होते हैं, शेष नहीं ।

- Reference : गोम्मटसार जीवकाण्ड, सम्यग्ज्ञान चंद्रिका, गोम्मटसार जीवकांड रेखाचित्र एवं तालिकाओं में
- Presentation created by : Smt. Sarika Vikas Chhabra
- For updates / feedback / suggestions, please contact
  - Sarika Jain, sarikam.j@gmail.com
  - ☎: 0731-2410880 , 94066-82889
  - www.jainkosh.org